ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292RNI
REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 163-166**
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-III, Issues-33, YEAR-July-Sept. 2024

भाषा विज्ञानः एक दार्शनिक अवलोकन

डॉ0 कामना शर्मा

पूर्व शोध अध्येत्री– यूजीसी नेट, आई.सी.पी.आर. जे.आर.एफ. लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ0प्र0) भारत

Received-29.08.2024, Revised-05.09.2024, Accepted-11.09.2024 **E-mail : kamanareyansh@gmail.com**

***सारांशः** भाषा विज्ञान की अवधारणा बीसवीं शताब्दी की दर्शन जगत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक रही है। भाषा विज्ञान की समस्या न केवल भारतीय दर्शन में, बल्कि पाश्चात्य दर्शन में हाल के वर्षों में रूचि का विषय बनी हुयी है। सम्भवतः इसका एक प्रमुख कारण यह है कि भाषा और विचार एक–दूसरे से असंपृक्त है। भाषा और विचार एक–दूसरे के बिना संभव ही नही है और चाहे पाश्चात् दर्शन में दर्शन का सम्प्रत्यय हो, जिसके अनुसार विचार पर विचार करना (thinking about thinking) ही दर्शन है अथवा श्वादे वादे जायते तत्व बोधःश्ही दर्शन है, दोनों के अनुसार, दर्शन समवाय सम्बन्ध से भाषा और विचार से जुड़ा है।*

***कुंजीभूत शब्द–** दार्शनिक अवलोकन, पाश्चात्य दर्शन, असंतृप्त, सम्प्रत्यय, भाषा विज्ञान, वैज्ञानिक विश्लेषण, मीमांसा*

भाषा विज्ञान वह विज्ञान या शास्त्र है जो भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण करता हैं इसे भाषा–शास्त्र या भाषा–दर्शन अथवा लिंग्विस्टिक्स या फिलोलोजी भी कहते हैं । यह व्याकरण से भिन्न शास्त्र है। व्याकरण में किसी वाक्य की शुद्धि अशुद्धि का विवेचन होता हैं, जबकि भाषा विज्ञान में भाषा की उत्पत्ति, उसके स्वरूप और गठन पर विचार और विश्लेषण किया जाता है।

भाषा विज्ञान की अवधारणा कोई नवीन अवधारणा नहीं है, अपितु यह बहुत ही प्राचीन अवधारणा है। भाषा विज्ञान के संबंध में भारतीय दर्शन के लगभग सभी दार्शनिकों जैसे पाणिनि, भर्तृहरि, जैन, बौद्ध, मीमांसा, न्याय आदि ने विवेचन और विश्लेषण किया है। इसी प्रकार पाश्चात्य दर्शन में भी रसेल, एयर, विट्गेंस्टीन, जी.ई. मूर आदि समकालीन दार्शिनकों ने भाषा विज्ञान को अपने विश्लेषण की केंद्र वस्तु बनाया है। भाषा विज्ञान के सम्बन्ध में निम्नलिखित समस्याएं उत्पन्न होती हैं। जैसे–पद क्या होता है? पदार्थ क्या होता है? वाक्य क्या होता है? वाक्यार्थ क्या होता है? क्या प्रतिज्ञप्तियाँ उसी रूप में वस्तुष्ओं को इंगित करती है जिस रुप में वो होती है? क्या भाषीय प्रतिज्ञप्तियों के द्वारा अर्थ को जाना जा सकता है? आदि।

उपर्युक्त तथा उनसे सम्बन्धित दार्शनिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए इस शोध–पत्र ने भर्तृहरि,न्याय, मीमांसा, बौद्ध, दर्शनों के अनुसार भाषा विज्ञान के दार्शनिक विश्लेषण को अपनी विषय वस्तु बनाया है, ताकि किसी भाषीय अभिव्यक्ति के अर्थ निर्धारिक तत्वों की सटीक व्याख्या की जा सके।

भर्तृहरि के अनुसार भाषाविज्ञान– भर्तृहरि एक वैयाकरण दार्शनिक हैं जिन्होंने स्फोटवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। स्फोटवाद की चर्चा भर्तृहरि के पहले भी की गयी है, किन्तु भर्तृहरि को ही स्फोटवाद की विस्तृत चर्चा करने के कारण इसका प्रतिपादक माना जाता है। 'सातवीं' शताब्दी में कुमारिल ने उन्हीं को आधार मानकर स्फोटवाद का खण्डन किया तो मंडन मिश्र ने स्फोटसिद्धि लिखकर उसका भरपूर मंडन किया। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड में स्फोटवाद की स्थापना की है।

भर्तृहरि का स्फोट एक वास्तविक शब्द है, जो उच्चारण के पूर्व और श्रवण के बाद मानसिक आकार लेना शुरू करता है। इस प्रकार स्फोटवाद वैयाकरणों का शब्द विचार है। वैयाकरण भर्तृहरि शब्द की आंतरिकता को स्वीकार करते हैं तथा इसे 'स्फोट' का नाम देते हैं। भर्तृहरि शब्द को नित्य तथा बुद्धिस्थ मानते हैं। यह ध्वनि द्वारा अभिव्यक्त होता है परन्तु स्वयं ध्वनि नहीं है। स्फोट शब्द है, ध्वनि शब्द का गुण है। स्फोट ही वर्ण, पद या वाक्य में अभिव्यक्त होता है।

भर्तृहरि के अनुसार, भाषा में यथार्थ कथ्य वस्तु (दि रियल ऑजेक्ट ऑफ यूटेरेन्स) स्फोट है, यद्यपि इसका दृश्यमान रूप वर्ण, पद आदि है। अखण्ड स्फोट वाक्य की अभिव्यक्ति के लिए उत्पन्न ध्वनियों द्वारा प्रथमतः वर्ण, पद भाग वाली बुद्धि प्रवृत्त होती है, पश्चात् वास्तविक अखण्ड वाक्यस्फोट का ज्ञान होता है।[1] अर्थात् भर्तृहरि शब्द को स्फोट रूप में मानते है। यह स्फोट अखण्ड होता है। इसकी अभिव्यक्ति वाक्य रूप में होती है। यह ध्वनियों द्वारा व्यक्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह वर्ण से मिलकर बना होता है और यह पद रूप् में होता है, किन्तु यह अखण्ड होता है तथा वाक्य रूप में होता है। भर्तृहरि स्फोट को वाक्य के रूप में मानने के कारण, वाक्य को भी अखण्ड मानते हैं तथा वाक्यार्थ को भी अखण्ड मानते हैं।

भर्तृहरि के अनुसार,

न हि किंचित पदनाम रूपेण नियंत क्वचित् ।
पदानामर्थरूपं च वाक्यर्थादेव जायते।।[2]

अर्थात् स्वरूपः कोई पद वाक्य से पृथक निश्चित नहीं हो सकता और पदों का अर्थ भी वाक्यार्थ से ही बनता है। इस प्रकार अखण्ड वाक्य अखण्ड वाक्यार्थ का बोधक है।

भर्तृहरि के अनुसार शब्द या स्फोट एक अखण्ड, नित्य तथा निरवयव होता है। यह वाक्य रूप होता है। वाक्य रूप में ही इसकी अभिव्यक्ति होती है तथा वाक्यार्थ का प्रतिभा से ग्रहण अखण्ड रूप में ही होता है। भर्तृहरि के अनुसार जैसे शुद्ध चौतन्य सत् है किन्तु उसका अनुभव उस रूप में न होकर सदैव किसी न किसी विषय के रूप में होता हैं। उसी प्रकार

वाक्य तथा वाक्यार्थ अपने शुद्ध रूप में अखण्ड तथा किसी प्रकार के भेद से शून्य है, पर उनमें पद तथा पदार्थ के रूप में भेद की प्रतीत होती है, पर ये सत् नहीं हैं।

भर्तृहरि के अनुसार, किसी भी वाक्य के अर्थ का निर्धारण प्रतिभा के द्वारा होता है। जैसे– 'यह मेज है।' इस वाक्य के अर्थ का निर्धारण हम प्रतिभा के द्वारा करते हैं। डॉ कपिलदेव द्विवेदी कहते है कि भर्तृहरि के अनुसार, 'स्फोटात्मक शब्द का कोई विभाग नहीं होता है, वह अखण्ड है, उसका वाच्य अर्थ प्रतिभा है, उसका विभाजन कैसे हो सकता है। जिस प्रकार अविद्वान को समझाने के लिए वाक्य में से पदों को पृथक करके उनका अर्थ बताया जाता है, उसी प्रकार पदों के अनुरोध से पदार्थ और विभिन्न वाक्यों के अनुरोध से वाक्यार्थ में विभाग की कल्पना की जाती है। अविद्वान व्यक्ति उनके विभाग से प्रकिया–भेद ओर प्रक्रिया–भेद से अर्थभेद को सत्य समझ लेता है, वस्तुतः विभाग प्रक्रिया–भेद और अर्थभेद असत्य और काल्पनिक हैं। लोकव्यवहार के लिए इस प्रकार का काल्पनिक विभाजन किया जाता है।'[3] अर्थात् भर्तृहरि के अनुसार, स्फोट या शब्द अखण्ड होता है और यह वाक्य रूप में होता है। इसके अर्थ का निर्धारण प्रतिभा के द्वारा होता है।

भर्तृहरि की प्रतिभा की अवधारणा अत्यन्त व्यापक है। यह वह समझ की शक्ति है जो परिस्थितियों को भाँप कर हमें परिस्थिति विशेष में अनुकूल प्रवृत्त करती है। प्रतिभा को चेतना का प्रकाश कहा जाता है। चेतना प्रकाश रूप होती है। जब कोई श्रोता क्रमवान ध्वनियों के माध्यम से कोई शब्द सुनता है, तो वह तपरान्त पदार्थों को जानने का प्रयास करता है और जानता है। जब वह सम्पूर्ण वाक्य (वाक्य में एक पद या एक से ज्यादा पद भी हो सकते है) को सुन लेता है तभी उसको एकाएक प्रकाश की चमक की भाँति सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ उसकी अखण्डता में ज्ञात हो जाता है। जिसमे पदार्थ की सत्ता निरर्थक हो जाता है। यह प्रकाश प्रतिभा के कारण होता है। प्रतिभा सम्पूर्णता में वाक्य का अर्थ समझती है और देश–काल परिस्थिति के अनुरूप उसका अर्थ प्रकट करती है। प्रतिभा में वाक्यार्थ का निर्धारण उसकी समस्त परिस्थितियों के बीच होता है और इस प्रकार अर्थ का समग्रता में ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार भर्तृहरि का वाक्यार्थ विचार समग्रतावाद हैं। जब भी कोई वाक्या बोला जाता है तो श्रोता जैसे ही उसको सुनता है, उसकी प्रतिभा जाग्रत हो जाती है। व्यक्ति की जैसी प्रतिभा होती है वही उसके लिए उस वाक्य का अर्थ होता है। जब कोई वाक्य श्रोता सुनता है तो सर्वप्रथम उसे एक–एक पदार्थ का ज्ञान होता है। तत्पश्चात् उसे प्रकाश की भाँति वाक्यार्थ का ज्ञान होता है, अर्थ अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। यह पदार्थ से भिन्न होता है। इस प्रकार भर्तृहरि के अनुसार, वाक्यार्थ का निर्धारण प्रतिभा के द्वारा होता है और इसका ग्रहण अखण्ड रूप में होता है।

न्याय दर्शन के अनुसार भाषाविज्ञान– न्याय दर्शन के प्रणेता महिर्षि गौतम है न्याय दर्शन के अनुसार, शब्द आकाश द्रव्य का गुण होता है। यह उत्पन्न होता है और उत्पन्न होने के कारण अनित्य होता है न्याय दर्शन ने वेदों को पौरुषेय स्वीकार किया हैं, अर्थात् ईश्वर कृत मानता है और इस मान्यता को लेकर नैयायिक शब्द तत्व के अनादि/अनंत होने का विरोध करता है। इसलिए वह शब्द को अनित्य मानता है। शब्द को अनित्य मानकर, वह शब्दार्थ भी अनित्य मानता है। इसलिए न्याय दर्शन शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को नित्य नहीं स्वीकार करता है।

न्याय दर्शन के अनुसार सार्थक शब्द को, अथवा जिस शब्द में किसी अर्थ को व्यक्त करने की शक्ति होती है, पद कहते हैं (शक्तं पदम्)। हम जैसे ही पद के अन्तिम अक्षर को सुनते हैं, हमें उसके अर्थ का ज्ञान हो जाता है। जैसे, 'गाय' पद से एक अन्तिम अक्षर 'य' को सुनने के साथ ही हमें पहले अक्षर 'गा' की स्मृति हो जाती हैं और पूरा शब्द 'गाय' हमारे मस्तिष्क में आ जाता है। न्याय दर्शन के अनुसार सभी वर्ण अपने पीछे संस्कार छोडते जाते हैं और अंतिम वर्ण के उच्चारण के बाद हमें शब्द का ज्ञान हो जाता हैं। इसी प्रकार शब्द से वाक्य का ज्ञान होता है। न्याय दर्शन के अनुसार पद से व्यक्ति, उसकी आकृति तथा उसकी जाति, तीनों की अलग–अलग मात्रा में जानकारी मिलती है। जैसे श्गायश पद से एक मूर्तिमान वस्तु, उसकी आकृति और उसकी जाति (गोत्व) का बोध होता है।

वाक्यार्थ के सम्बन्ध में नैयायिकों का यह मानना है कि जब कोई वाक्य बोला जाता है, तो सबसे पहले पदज्ञान होता है, फिर शक्ति ज्ञान के माध्यम से पदार्थ स्मरण होता है, फिर संसर्ग मर्यादा से वाक्यार्थ का ज्ञान हो जाता है। वाक्यार्थ ज्ञान की प्रक्रिया मे आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि और तात्पर्य साधन होते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि नैयायिकों के अनुसार, पद ही भाषा की न्यूनतम ईकाई होती हैं, क्योकि वाक्यार्थ ज्ञान की प्रक्रिया में नैयायिक यह मानते हैं कि सबसे पहले पदज्ञान होता है। जो कि वाक्यार्थ ज्ञान या शाब्दबोध का करण होता है। तत्पश्चात एक–एक पद से पदार्थ स्मरण होता है। फिर संसर्ग मर्यादा से वाक्यार्थ ज्ञान या शाब्दबोध हो जाता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि नैयायिकों के अनुसार, पद ही भाषा की न्यूनतम ईकाई होते हैं। पद के द्वारा ही वाक्यार्थ का ज्ञान होता है।

इस सम्बन्ध में न्यायमंजरी में कहा गया है कि 'व्यवच्छेदे तु न सा गतिस्तस्मात्संसृष्टाः पदार्था वाक्यार्थ इति स्थित अर्थात् 'परस्पर में सम्बद्ध पदार्थ समुदाय ही वाक्यार्थ होता।'[4] अर्थात् वाक्य में प्रयुक्त पदार्थ समुदाय ही वाक्यार्थ होते हैं। दूसरे शब्दों में, वाक्यार्थ ज्ञान में पहले पदज्ञान होता है, फिर पदार्थ का स्मरण होता है, तत्पश्चात् आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि के द्वारा ही वाक्यार्थ ज्ञान हो जायेगा।

आचार्य कपिलदेव के अनुसार, 'पूर्व–पूर्व वर्ण की स्मृति के सहयोग से अन्तिम वर्ण, जिसमें कि विनाश की अवस्था का अनुभव किया जाता है, पद होता है। इसी प्रकार पूर्व–पूर्व पद की स्मृति के सहयोग से अन्तिम पद, जिसमें कि विनाश की अवस्था का अनुभव किया जाता है, वाक्य होता है। पूर्व–पूर्व पदार्थ के स्मरण के सहयोग से अन्तिम पद के द्वारा उत्पन्न होने वाली प्रतीति को वाक्यार्थ कहते हैं।'[5] अर्थात् वाक्यार्थ ज्ञान की प्रक्रिया में पहले एक–एक पदार्थ का ज्ञान होता है और

उनके संस्कार बनतें जाते है, फिर जैसे ही अन्तिम पद आता है, वैसे ही उसके ज्ञान के साथ ही पूर्व में आये पदार्थों के संस्कार की स्मृति हो जाती है और इस प्रकार से वाक्यार्थ का ज्ञान हो जाता हैं।

इस प्रकार नैयायिकों के अनुसार, पूर्व–पूर्व पदार्थ के स्मरण के सहयोग से अन्तिम पद के द्वारा उत्पन्न होने वाले ज्ञान से वाक्यार्थ का ज्ञान होता है।

मीमांसा दर्शन के अनुसार भाषाविज्ञान– मीमांसा दर्शन के प्रणेता महिर्षि जैमिनी है। मीमांसा दर्शन भी न्याय दर्शन की तरह शब्द को आकाश द्रव्य का गुण मानता है इसके अनुसार शब्द अभिव्यक्त होता है न कि उत्पन्न होता है मीमांसा दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है, धर्म की स्थापना करना। धर्म की स्थापना करने के लिए मीमांसा दर्शन वेदों का सहारा लेता है और वेदों को अपौरुषेय प्रमाणित करता है, अर्थात् मीमांसा दर्शन के अनुसार, वेदों की रचना, किसी पुरुष विशेष ने नहीं की है। ना ही ईश्वर ने ही की है। इसलिए मीमांसा दर्शन वेदों को अपौरुषेय मानता है। वेदों को अपौरुषेय मानने के कारण यह शब्दों को भी नित्य मानता है (क्योंकि वेद शब्द आधारित होते हैं) और शब्द को नित्य मानने के कारण शब्दार्थ, शब्द–अर्थ सम्बन्ध को भी नित्य मानता है।

वाक्यार्थ बोध के सम्बन्ध में मीमांसा दर्शन में दो मत प्रचलित है। पहला कुमारिल का अभिहितान्वयवाद तथा दूसरा प्रभाकर का अन्विताभिधानवाद।

कुमारिल भट्ट अभिहितान्वयवाद को मानते है तथा प्रभाकर अन्विताभिधानवाद को मानते है। कुमारिल के अनुसार पहले अभिधा शक्ति से पदार्थ स्मरण होता है फिर बाद में फिर उन पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध तात्पर्या शक्ति के द्वारा अन्वय होता है अर्थात् पहले अभिधा शक्ति से पदार्थ का ज्ञान होता है फिर बाद में उनका अन्वय या संसर्ग बोध होता है । कुमारिल के अनुसार, 'वाक्यार्थ बोध में सर्वप्रथम पदों के अभिहित या मुख्य अर्थ का बोध होता है। इसके अनन्तर उन पदार्थों के परस्पर संसर्ग रूप वाक्यार्थ का लक्षण से ज्ञान होता है'[6] अर्थात् वाक्यार्थ बोध की प्रक्रिया में पहले पदों के मुख्य अर्थ का बोध होता है, तत्पश्चात् उन पदार्थों के संसर्ग रूप वाक्यार्थ का बोध होता है। मीमांसा दार्शनिक प्रभाकर यह मानते है कि पदार्थों का अन्वय बाद में नहीं होता है, बल्कि पदार्थ अन्वित होकर ही शाब्दबोध या वाक्यार्थ बोध कराते है। प्रभाकर के अनुसार, 'पदो के अभिहित अर्थ के ज्ञान के अनन्तर वाक्यार्थ ज्ञान न मानकर वाक्यार्थ ज्ञान के साथ पदों के अभिहित अर्थ का भी ज्ञान मानते हैं '[7] अर्थात् प्रभाकर के अनुसार, वाक्यार्थ ज्ञान की प्रकिया में अन्वित पदों का ही बोध होता ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीमांसा दर्शन में वाक्यार्थ के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं। पहला कुमारिल भट्ट का अभिहितान्वयवाद और दूसरा प्रभाकर का अन्विताभिधानवाद।

बौद्ध दर्शन के अनुसार भाषाविज्ञान– अपोहवाद बौद्ध दर्शन का भाषा–विषयक सिद्धान्त है। अपोहवाद के सिद्धान्त की उत्पत्ति बौद्ध दर्शन में उनके मूलभूत सिद्धान्त अनित्यतावाद की स्थापना के परिणामस्वरूप हुआ, जिसका उद्देश्य जहाँ एक ओर जाति या सामान्य का खण्डन करना था, तो वही दूसरी तरफ शब्दार्थ–विषयक मान्यता को स्थापित करना भी था। अपोहवाद का सम्बन्ध न केवल शब्दार्थ से होता है, बल्कि शब्द, शब्द–अर्थ सम्बन्ध, वाक्य, वाक्यार्थ आदि से भी होता है।

अपोहवाद के अनुसार, जब कोई शब्द बोला जाता है, तो वह असंख्य संभावित अर्थों को अपोहित करके एक अर्थ शेष रहने देता हैं और वही उस शब्द का अर्थ कहा जाता है। उदाहरण के लिए श्गायश शब्द यह बताता है कि उसका वाच्यार्थ अश्व, बकरी, हाथी आदि नहीं हैं, अर्थात् शब्द का कार्य अपने अर्थ से भिन्न अन्य अर्थों का निषेध करना हैं। आचार्य दिङ्नाग के अनुसार– 'शब्द प्रतिशोध सूचक है। ये अपोह, व्यावृत्ति या निषेध के लिए प्रयुक्त होते है।'[8] अर्थात् शब्द दूसरों के निषेध के लिए प्रयुक्त होते है। अर्थात् बौद्ध दार्शनिकों के अनुसार, शब्द वस्तु की सत्ता का नहीं बोध कराते है। अपितु उनसे भिन्न अन्य शब्दों के निषेध का बोध या ज्ञान कराते है।

आचार्य धर्मकीर्ति के अनुसार, "Words have no direct acess to the eÛternal reality ¼vastavartha½& The fuction of verbal import is simply to negate the couter & correlates of the object-"[9] अर्थात् शब्द का बाह्य सत्ता के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है। शब्द का कार्य केवल अपने से भिन्न शब्दों का निषेध करना होता हैं। बौद्ध दार्शनिक रत्नकीर्ति अपोहवाद के सम्बन्ध में थोड़ा अलग विचार रखते हैं। रत्नकीर्ति के अनुसार, "By the term 'Differentiation' what is intended is not merely a positive entity] not merely eÛclusion of non&A] but the meaning of a term is positive thing qualified by the eÛclusion of the other-"[10] अर्थात् रत्नकीर्ति के अनुसार, अपोहवाद से हम न केवल विधि को ग्रहण करते हैं और न ही केवल अन्य के निषेध को ग्रहण करते है, अपितु अन्य–निषेधविशिष्ट विधि शब्दों को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार बौद्ध दर्शन के अनुसार, किसी शब्द का अर्थ, उससे भिन्न अन्य शब्दों का निषेध करने पर, जो बचता है, वह होता है, इसी को बौद्ध दार्शनिक अपोहवाद का नाम देते है।

बौद्ध दार्शनिकों के अनुसार, शब्द न सामान्य के वाचक है और न ही विशेष के वाचक है, बल्कि वे केवल अतद्–व्यावृत्ति या अन्य व्यावृत्ति या श्अपने से भिन्न का निषेध के द्वारा विकल्पित विषय को ही सूचित करते है, न कि किसी बाह्य विषय को सूचित करते है। बौद्ध दार्शनिकों के अनुसार, 'शब्द का वाच्यार्थ न तो सामान्य होता है और न ही विशेष होता है, क्योंकि बौद्धों के अनुसार, अनेक गायों में अनुस्यूत एक नित्य और निरंश गोत्व अयथार्थ है, क्योंकि विभिन्न देशों और विभिन्न कालों में स्थित व्यक्तियों अर्थात् गायों में एक साथ एक ही गोत्व का पाया जाना अनुभव से विरूद्ध है'[11] अर्थात् बौद्ध दर्शन के अनुसार, सामान्य या जाति एक विकल्प या कल्पना मात्र है। सामान्य की न तो कोई वास्तविक सत्ता होती है और न ही सामान्य यथार्थ होते है। यह तो खरगोश की सीगों की तरह असत् (जिसकी कभी सत्ता नही होती है।) होता है। यह (सामान्य) केवल हमारी कल्पना है। विकल्प मात्र है।

निष्कर्षः भाषा हमारे जीवन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंग हैं, जिसके माध्यम से हम न केवल अपने भावों और विचारों को व्यक्त करते है, बल्कि परम् सत् को जानने का प्रयास भी करते है। जब हम अपने भावों और विचारों को व्यक्त करते है, तो अपने भावों और विचारों को किसी भाषीय अभिव्यक्ति के द्वारा ही व्यक्त करते है, किन्तु जिस भाषीय अभिव्यक्ति के माध्यम से हम अपने भावों और विचारों को व्यक्त करते है, यदि उसका अर्थ न पता हो, तो हम अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते है। इसलिए भाषा विज्ञान की सार्थकता बढ़ जाती है।

भाषा हमारे वैचारिक आदान प्रदान का एक माध्यम होती है। भाषा आभ्यन्तर अभिव्यक्ति का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम है। भाषा की इसी वैचारिक प्रासांगिकता और महत्ता के कारण दर्शन के क्षेत्र में भी भाषाविज्ञान दार्शनिकों के विश्लेषण का केन्द्र बनी रही है। वैयाकरण दार्शनिक भर्तृहरि अपने ग्रन्थ वाक्यपदीय में शब्द/वाक्य को स्फोट बताया है और इसे अखण्ड रुप में स्वीकार किया है। न्याय दार्शनिक पद से पदार्थ ज्ञान के द्वारा वाक्यार्थ ज्ञान को बताते है। मीमांसा दर्शन में वाक्यार्थ के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित है। कुमारिल का अभिहितान्चयवाद और प्रभाकर का अन्विताभिधानवाद। बौद्ध दार्शनिक भाषा के सम्बन्ध में अपोहवाद के सिद्धान्त का निरुपण करते हैं।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि भाषा विज्ञान के सम्बन्ध में दार्शनिकों के मतों में परस्पर भिन्नताये तो परिलक्षित होती हैं परन्तु इन भिन्नताओं के होते हुए भी उनके लक्ष्यों में एकरूपता है और वह लक्ष्य है भाषा विज्ञान से सम्बंधित समस्याओ का निराकरण करना।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मिश्र डॉ. कमलाकान्त, अर्थविज्ञान संस्कृत व्याकरण एवं काव्यशास्त्र का योगदान, नाग प्रकाशक, दिल्ली, 1988, पे 252।
2. मिश्र डॉ. अर्जुन, व्याकरण–दर्शन में अद्वैत–विमर्श, आराधना ब्रदर्स, गोबिन्द नगर, कानपुर, 1983, पे 206 ।
3. द्विवेदी डॉ. कपिलदेव, अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000 पे0 284 ।
4. न्यायमंजरी भाग–2, हिन्दीभाषानुवादक पण्डित आनन्द झा, न्यायाचार्य, सम्पादक किशोर नाथ झा, प्रकाशक, प्रकाशक कामेश्वर सिंह, संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, 2002, पृ० 139।
5. द्विवेदी कपिलदेव, अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000, पृ० 281 द्य
6. नेने डॉ. सोमनाथ, भाट्टचिन्तामणि–तर्कपाद–विमर्श, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, पे 150 ।
7. वही 150.
8. हेमलता श्रीवास्तव, बौद्ध सौत्रान्तिक ज्ञानमीमांसा, महामाया पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2005, पृ० 131 द्य
9- Mishra, R/K, Buddist theory of Meaning and literary Analysis, D-k Print Word (P), New Delhi, 1965, page no- 121.
10- वही 111.
11. जैन प्रो० सागरमल, जैन भाषा–दर्शन, प्रतापभाई भोगीलाल लेहरचन्द भारतीय संस्कृति संस्थान, दिल्ली–पाटण, 1986, पृ० 521

*****